अर्थशास्त्रः प्राचीन मूल्य

कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' को प्राचीन भारत में प्रशासन और अर्थव्यवस्था का ग्रंथ माना जाता है। भारत के प्रथम सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य के प्रमुख परामर्शदाता कौटिल्य की मुख्य चिंता यह थी कि मौर्य साम्राज्य का विस्तार कैसे किया जाए और उसकी सीमाओं की रक्षा कैसे की जाए और इन सबके लिए धन कैसे जुटाया जाए। इस ग्रंथ का मुख्य विषय भी यही है। इसलिए स्वाभाविक था कि कौटिल्य को कृषि ही राजस्व का स्रोत नजर आया।

ग्रंथ में इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि लोगों को विशेष पारिस्थितिकीय संदर्भों में बरसात, मिट्टी और सिंचाई तकनीक के विभिन्न प्रकारों की विस्तृत जानकारी थी। 'अर्थशास्त्र' में हिमालय से लेकर समुद्र तक पूरे देश को विभिन्न प्रकार के क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है- अरण्य, ग्राम्य, पर्वत, औदक, भौम (शुष्क भूमि), सम, विषम। अस्माक और अवंति जैसे प्रसिद्ध स्थानों पर औसत सालाना वर्षा क्रमशः 13.5 और 23 द्रोण तक होती थी, (1 द्रोण = 1.5 या 2 इंच)। अस्माक (ऊपरी गोदावरी क्षेत्र), अवंति (मालवा) और अपरांत (कोंकण को मिलाकर लगभग एक-सा क्षेत्र बनता था। हैमाण्य गंगा के मैदानी इलाकों में था जहां हिमालय की बर्फ से बनने वाली नदियां बहती थीं और औसत वर्षा असीमित होती थी। लेकिन अच्छी फसल के लिए पर्याप्त बारिश जितनी

जरूरी है उतनी ही जरूरी है बारिश के अंतर में भी। 'अर्थशास्त्र' में कहा गया है, "प्रथम और अंतिम महीनों में एक-तिहाई और बीच के महीनों में दो तिहाई वार्षिक वर्षा आदर्श मानी जाती थी।"

भूमि का वर्गीकरण : वर्षा पर निर्भर न रहने वाले कृषि क्षेत्रों को अदेवमात्रिका कहा जाता था और उन्हें वर्षा पर निर्भर क्षेत्रों से ज्यादा मूल्यवान माना जाता था। वार्षिक 16 द्रोण वर्षा पाने वाले कृषि क्षेत्रों को जंगला (शुष्क), 24 द्रोण पाने वाले को अनूप (सिंचित) कहा जाता था। विभिन्न फसलों, नमी और जान अनुपात के हिसाब से भी खेतों का वर्गीकरण किया गया था- स्थल (शुष्क भूमि), केदार (दलदली भूमि), संडा (हरित बगीचे) और वात (पुष्प और फल व वाटिकाएं)। पानी भरे खेतों और भारी वर्षा वाले क्षेत्रों को अनूप कहा जाता था। दूसरा वर्गीकरण स्थल और औदक (पानी भरे क्षेत्र) में किया जाता था। फसल की निश्चितता के कारण औदक की छोटी पट्टी स्थल के बड़े क्षेत्र से बेहतर मानी जाती थी, यानी औदक, और अदेवमात्रिका भूमि समान थी। स्थल उन फसलों के लिए ठीक था जिन्हें पकने के लिए कम पानी की जरूरत होती थी। अगर उपयुक्त फसल लगाई गई तो काफी पैदावार होती थी। केदार का मतलब सिर्फ वह भूमि नहीं थी जिसे वर्षा का पानी खूब मिलता था, इसका अर्थ उस भूमि से भी था जिसे सिंचाई से पर्याप्त पानी मिलता था। केदार को राजस्व संबंधी उन चीजों की सूची में रखा गया था जो सेतु (सिंचाई व्यवस्था) में गिनी जाती थी। औदक, अनूप और केदार अनाज (धान्य) के लिए उपयुक्त थीं।

शायद इसी जमीन पर साली और ओरिही की फसलें उगाई जाती थीं।

भूमि संरक्षण : कौटिल्य ने मानव संसाधनों, उद्यमशीलता और संगठन के मूल्य पर बहुत जोर दिया है। वे कहते हैं कि भूमि वैसी होती जैसा मनुष्य बनाता है और उन्होंने भूमि के विभिन्न प्रकारों के मूल्यों पर दिलचस्प बातें बताई हैं। 'अर्थशास्त्र' के मुताबिक, कृषि के लिए भूमि को मूल्यवान बनाने के लिए सिंचाई की उपयुक्त व्यस्था करनी चाहिए। इसलिए वर्षा पर निर्भर भूमि के मुकाबले सिंचाई सुविधाओं वाली भूमि को ज्यादा मूल्यवान समझा जाता था। प्रशासन सिंचाई परियोजनाओं को शुरू और प्रोत्साहित करता था। राजस्व के स्रोतों की सूची में कुछ कृषि भूमि को "सिंचाई कार्य" शीर्षक में रखा गया है। इस तरह की भूमि में पुष्प वाटिकाओं, फल के बगीचों, सब्जी के बगीचों, पानी वाले खेतों, कंद-मूल उपजाने वाली भूमि को शामिल किया गया है। इससे जाहिर होता है कि सिंचाई कितनी व्यापक पैमाने पर होती थी।

सिंचाई के वास्ते वर्षा का पानी संचित करने के लिए तटबंध बनाना आम प्रचलन था। नदी, झरना, झील जैसे प्राकृतिक और तालाब, जलागार, कुएं जैसे मानवनिर्मित स्रोतों का उपयोग सिंचाई के लिए किया जाता था। शुष्क- 'अनुदक'- स्थानों और जल सिंचित-'सहोदक'-स्थानों पर भी सिंचाई की व्यवस्था जरूरी मानी गई थी। शुष्क क्षेत्रों में सरकारी अधिकारियों को कुएं और अन्य जल संसाधन बनवाने को कहा जाता था। 'स्थल' भूमि वाले क्षेत्र

को 'अनुदक' कहा जाता था। 'नया चंद्रिका' के मुताबिक, ऐसे क्षेत्र में कोई नदी नहीं होती थी और वर्षा भी नगण्य होती थी। कौटिल्य को पता था कि ऐसे क्षेत्रों में जल आपूर्ति का सबसे व्यावहारिक तरीका था- कुएं खोदना। कहा गया था कि 'अनुदके कूप सेतुबंधोस्तान स्थापयेत' यानी अनुदक क्षेत्रों में कुएं ही सिंचाई के मुख्य साधन थे।

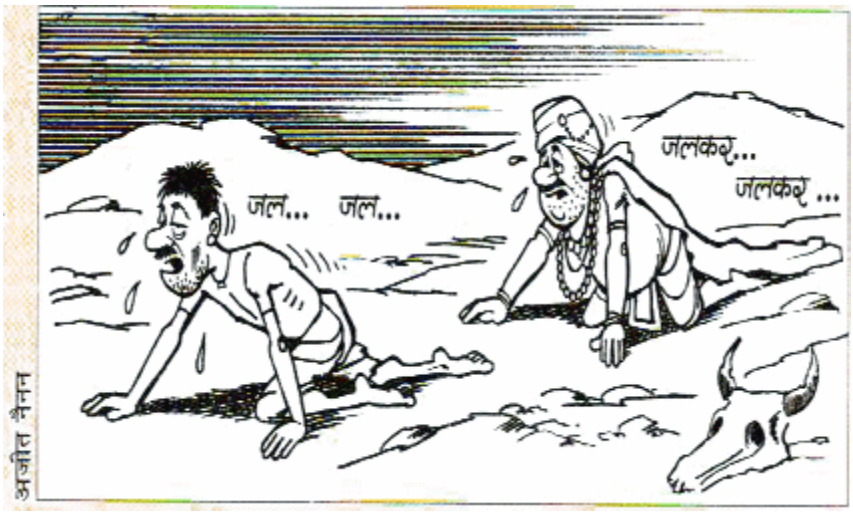

सिंचाई साधनों का उपयोग करने वालों पर पुराने भारतीय शासक लगान के अलावा विशेष जल उपकर भी वसूलते थे। अपने साधनों से सिंचाई करने वालों को भी यह देना होता था।

एक स्थान पर लिखा गया है कि नदी के बांध 'नदीनीवंधयतन' से खुदाई 'खताप्रवर्तिम' करके पानी लाया जा सकता है। जाहिर है, यहां नहर खोदने का जिक्र किया गया है, जलागार या नदी से पानी ले जाने के लिए नहरें खोदी जाती थीं, जिन्हें 'आधार परिवह' या 'उदकमार्ग' कहा जाता था। सिंचाई की व्यवस्था निजी और सरकारी दोनों स्तरों पर होती थी। नए बसे गांव में लोग सिंचाई की व्यवस्था खुद करते थे तो सरकार भी उसमें सहायता करती

थी। इस सहायता के एवज में राजा को कुछ अधिकार स्वतः मिल जाते थे। सिंचाई की सुविधाओं का उपयोग करने वालों से सरकार राजस्व के अलावा जल उप-कर 'उदकभागम' भी वसूलती थी। निजी जल साधनों का उपयोग करने वाले को भी यह कर देना पड़ता था। नई सिंचाई व्यवस्था करने या पुरानी की मरम्मत करने के लिए इस कर से अस्थायी छूट दी जाती थी। तालाबों और कुओं के मालिक किसानों से पैदावार का एक हिस्सा लेने के एवज में उन्हें पानी देते थे। लेकिन निजी जल संसाधनों को अगर दुरुस्त नहीं रखा जाता था तो उन पर से स्वामित्व समाप्त कर दिया जाता था। 'अर्थशास्त्र' में कहा गया है कि शारीरिक श्रम से सिंचित खेत के किसान को पैदावार का पांचवां भाग, कंधे पर पानी ढोकर लाने वाले को चौथा भाग, जल उत्थापक के उपयोग पर एक-तिहाई, नदी, तालाब, झील, कुओं आदि से पानी लेने वाले को चौथा भाग देना पड़ता है।

(सेंटर फॉर साइंस एंड इनवायरोनमेंट की पुस्तक "बूंदों की संस्कृति" से साभार)